अध्याय १४

लिपि का इतिहास
(Palaeography)

१४.१. लिपि का प्रारम्भ

लिपि की उपयोगिता

भाषा का सम्बन्ध ध्वनियों से है। ध्वन्यात्मक भाषा वक्ता के मुख से निकल कर श्रोता के कान तक पहुँचकर अपना प्रभाव प्रकट करती है। यह वाचिक भाषा है। वक्ता के मुख से निकलने के कुछ क्षणों बाद इसका स्वरूप नष्ट हो जाता है। मानव की प्रवृत्ति है कि वह अपने कार्यों और विचारों को स्थायित्व प्रदान करना चाहता है। इसके लिए वह ऐसे साधनों का उपयोग करता है, जिससे उसके विचार आगे की पीढ़ी तक पहुँच सकें। इन्हीं गूढ़ विचारों ने लिपि को जन्म दिया। इसका प्रारम्भिक रूप क्या था, यह आज बताना संभव नहीं है, परन्तु अनुमान है कि अपने भावों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम चित्रात्मक लिपि का प्रयोग हुआ, तत्पश्चात् भावलिपि और अन्ततः ध्वनिलिपि।

भाषा और लिपि की अपूर्णता—यह अनुभव-सिद्ध है कि मानव के संवेदनात्मक भावों को भाषा पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं कर पाती है। हर्ष, शोक, मिठास, कड़वापन आदि भाव भाषा से पूर्णतया व्यक्त नहीं हो पाते हैं। लिपि भाषा का ही स्थूल रूप है। लिपि भी मनोभावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। भाषा और लिपि में मुख्य अन्तर यह है कि—(१) भाषा सूक्ष्म है, लिपि स्थूल है। (२) भाषा की ध्वनियों में अस्थायित्व है, लिपि में अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व है। (३) भाषा में सुर, तान आदि के द्वारा बहुत कुछ मनोभावों को व्यक्त किया जा सकता है, लिपि में नहीं। (४) भाषा श्रव्य है, लिपि दृश्य एवं पाठ्य। (५) भाषा सद्यःप्रभावकारी है, लिपि विलम्ब से। दोनों में साम्य यह है कि—(१) दोनों मानव की भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। (२) दोनों से भावाभिव्यक्ति अपूर्ण होती है। (३) दोनों देश-कालादि-भेद से भिन्न हैं। (४) दोनों सांस्कृतिक उन्नति के प्रतीक हैं। (५) दोनों का ज्ञान शिक्षण से प्राप्त होता है।

लिपि की उत्पत्ति—लिपि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह इतना ही विवादग्रस्त है, जितना भाषा की उत्पत्ति। भाषा और लिपि की उत्पत्ति के विषय में अन्ततः अनुमान का ही आश्रय लेना पड़ता है। भाषा सूक्ष्म है, अतः उसकी उत्पत्ति बताना अधिक कठिन है। लिपि की उत्पत्ति भी बताना प्रायः उतना ही कठिन है, क्योंकि प्रारम्भ में जिन

वस्तुओं पर ये लिपियाँ लिखी गईं, वे काल-कवलित हो गई हैं। पाषाण, स्तम्भ, ताम्र आदि पर जो कुछ चीजें लिखी गईं, वे ६ हजार वर्ष तक का इतिहास बताती हैं। इनमें भी एकरूपता नहीं है। कहीं कुछ लकीरें, कहीं पशु आदि की आकृति, कहीं भावमुद्रा और कहीं लिपि है। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लिपि के विकास की मुख्यतया ३ अवस्थाएँ रही हैं—(१) चित्रलिपि, (२) भावलिपि, (३) ध्वनिलिपि।

१४.२. लिपि-विकास के तीन चरण

अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार विश्व के विभिन्न देशवासियों ने अपनी भाषा का जन्मदाता कोई देवता माना है। भारतीयों ने 'ब्राह्मी लिपि' का जन्मदाता ब्रह्मा को माना है। इसी प्रकार मिस्री लोगों ने 'थाथ' (Thoth) को, बेबिलोनियावालों ने 'नेबो' (Nebo) को, प्राचीन यहूदियों ने 'मूसा' (Moses) को और यूनानियों ने 'हर्मेस' (Hermes) को अपनी-अपनी लिपि का जन्मदाता माना है।

आज तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीनतम उपलब्ध सामग्री ४००० ई० पू० तक की है। इस प्रकार प्राचीनतम लिपि-चिह्न ६ हजार वर्ष पूर्व तक के मिलते हैं।

लिपि-विकास के मुख्यतया तीन चरण हैं---(१) चित्रलिपि, (२) भावलिपि, (३) ध्वनिलिपि। इनके अतिरिक्त तीन भेद और माने जाते हैं। ये गौण भेद हैं। इनका उल्लेखमात्र पर्याप्त है। जैसे—**(१) सूत्र-लिपि**—सूतों में गाँठ आदि देकर भाव व्यक्त करना। रस्सियों में गाँठ देना, रस्सी की लम्बाई-चौड़ाई, रस्सी का विभिन्न रंगों से रंगना आदि। इसका उल्लेख 'हेरोडोटस' ने किया है। इसका उदाहरण पेरू में प्राप्त 'क्वीपू' सूत्रलिपि है। **(२) प्रतीकात्मक लिपि**—विभिन्न रंगों की वस्तुओं से कुछ विशेष संवाद भेजना। लाल रंग से—युद्ध, सफेद से—युद्ध-विराम आदि। प्राचीन समय में कुछ आदिम जातियों में ऐसे संकेत प्रचलित थे। **(३) भाव-ध्वनि-मूलक लिपि**—यह कुछ अंश में भावात्मक और कुछ अंश में ध्वन्यात्मक थी। मिस्री, हित्ती, मेसोपोटामियन आदि लिपियाँ इसमें आती हैं। सिन्धु-घाटी-लिपि को भी कुछ विद्वानों ने इसी श्रेणी में रखा है।

१. चित्रलिपि (Pictography)—यह लिपि का प्राचीनतम रूप था। जिस वस्तु का वर्णन करना होता था, उसका चित्र बना देते थे। आदमी, स्त्री, आँख आदि के लिए उस जैसा छोटा चित्र बना देते थे। इससे संबद्ध व्यक्ति भाव समझ जाता था। ऐसे प्राचीन चित्र फ्रांस, स्पेन, यूनान, इटली, मिस्र आदि से मिले हैं। ये पत्थर, हड्डी, हाथी-दाँत, सींग, छाल, मिट्टी के पात्रों आदि पर होते थे।

समीक्षा—इसके **लाभ** ये थे—(१) वस्तु का तुरन्त बोध, (२) सर्वजन-सुबोधता, (३) शिक्षण की अनावश्यकता। इसके **दोष** अधिक हैं—(१) संकेत अनन्त बनाने पड़ते थे। प्रत्येक वस्तु के लिए पृथक् संकेत होता था। (२) व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का बोध नहीं हो सकता था। (३) अमूर्त भाव एवं विचार प्रकट नहीं हो सकते थे। (४) चित्र बनाना श्रमसाध्य कार्य था। शीघ्रता में चित्र नहीं बन सकता था। (५) अधिक समय

की अपेक्षा होती थी। (६) ध्वनिलिपि की अपेक्षा स्थान अधिक लेता था। (७) स्थान, समय आदि का बोध स्पष्ट रूप से नहीं हो सकता था।

२. **भावलिपि** (Ideography)—यह लिपि विकास का द्वितीय चरण था। चित्रलिपि अधिक श्रम-साध्य थी, अतः लघुतर उपाय सोचने की प्रक्रिया भी जारी रही। फलस्वरूप भावलिपि का प्रादुर्भाव हुआ। चित्रलिपि और भावलिपि में अन्तर यह है कि चित्रलिपि में केवल वस्तु का चित्र बनाया जाता था। भावलिपि में चित्रों को सरल बनाया गया और साथ ही उनसे संबद्ध अर्थ भी लिए गए। जैसे—सूर्य के लिए एक गोला बनाना, उससे गर्मी, धूप, प्रकाश, दिन आदि का अर्थ बताना। रोने के लिए आँख का चित्र बनाकर उससे आँसू टपकती बूँदें दिखाना। इस प्रकार की लिपि के उदाहरण उत्तरी अमेरिका, चीन, अफ्रीका आदि में मिलते हैं। चीनी लिपि में आज भी अनेक ऐसे शब्द हैं, जो भाव-लिपि मूलक हैं। जैसे—मनुष्य के लिए 'जेन' में ऊपर खड़ी लकीर, नीचे दो तिरछी लकीरें। ऊपर धड़ हो गया, नीचे दो पैर।

समीक्षा—यह चित्र-लिपि का विकसित रूप है। चित्र बनाने की क्लिष्टता कुछ कम हुई। एक चित्र से अनेक अर्थ प्रकट होने लगे। यह चित्राभास लिपि हुई। इसमें भी पूर्ववत् दोष विद्यमान रहे। सूक्ष्म भावों को व्यक्त नहीं किया जा सकता था। किस चित्र से क्या भाव लिए जाएँगे, इसमें समरूपता नहीं थी।

३. **ध्वनिलिपि** (Phonetic Script)—यह लिपि-विकास का तृतीय चरण था। यह मानव की लिपि-सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि थी। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए कुछ संकेत निर्धारित किए गए। इनसे मुखोच्चरित प्रत्येक ध्वनि को लिपि-बद्ध किया जा सकता था। देश-काल के भेद से ये ध्वनिलिपियाँ अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग विकसित हुईं। इस प्रकार की लिपियाँ हैं—देवनागरी, रोमन, अरबी आदि।

कुछ विद्वानों ने ध्वनिलिपि के दो भेद किए हैं—(१) अक्षरात्मक (Syllabic), (२) वर्णात्मक (Alphabetic)। अक्षरात्मक में चिह्न किसी अक्षर (Syllable) को व्यक्त करता है, वर्ण को नहीं। वर्णात्मक में चिह्न वर्ण को व्यक्त करता है। इसमें 'देवनागरी' को अक्षरात्मक में और 'रोमन' को वर्णात्मक में रखा गया है। साथ ही रोमन लिपि की उत्कृष्टता सिद्ध की गई है। देवनागरी पूर्णतया वर्णात्मक लिपि है। प्रत्येक वर्ण के लिए स्वतन्त्र क् आदि चिह्न हैं। केवल लेखन की सुविधा के लिए वर्णमाला में व्यंजनों को हलन्त (क्, ख्, ग्) न लिखकर अकारान्त (क, ख, ग आदि) लिखा जाता है। रोमन में यान्त्रिक सुविधा अवश्य है, क को KA लिखा जाएगा, अ को अलग दिखाया जा सकता है, परन्तु सांकेतिक निर्देशों के बिना अ-आ, इ-ई आदि स्वरों का भेद नहीं दिखाया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए उसकी उपयोगिता अवश्य है, परन्तु देवनागरी या भारतीय लिपियों से उसे अधिक वैज्ञानिक या उत्कृष्ट कहना केवल प्रलाप है, रोमन में वैज्ञानिकता का नाम भी नहीं है।

१४.३. विश्व की प्राचीन लिपियों का संक्षिप्त परिचय

विश्व की प्राचीन लिपियों को वर्णमाला के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जाता है—

(१) वर्णमाला-रहित, (२) वर्णमाला-युक्त। दोनों वर्गों की प्रमुख भाषाएँ ये हैं—

वर्णमाला-रहित लिपियाँ	**वर्णमाला-युक्त लिपियाँ**
१. क्यूनीफॉर्म (कीलाक्षर)	१. सामी, आर्मेइक, फोनीशियन, हिब्रू लिपियाँ
२. हीरोग्लाइफिक (गूढाक्षर)	२. अरबी लिपि
३. क्रीटी लिपि	३. ग्रीक (यूनानी) लिपि
४. सिन्धुघाटी लिपि	४. लैटिन (रोमन) लिपि
५. हिटाइट लिपि	५. खरोष्ठी लिपि
६. चीनी लिपि	६. ब्राह्मी लिपि

१. क्यूनीफॉर्म (Cuneiform) **लिपि**—इसको कीलाक्षर, कोणाक्षर, त्रिकोण, बाणाक्षर आदि कहते हैं। यह लिपि चट्टानों और पक्की मिट्टी के टुकड़ों पर लिखी मिलती है। इस लिपि के अभिलेख इन स्थानों से मिले हैं—मेसोपोटामिया से (४ हजार ई० पू०), मितानी लेख (१४०० ई० पू०), वान से (९वीं सदी ई० पू०), बेबीलोनिया, असीरियन जाति के लेख (२५०० ई० पू०)। सर्वप्रथम १८०२ में जार्ज फ्रेड्रिश ग्रोटेफेन्ड (George Friedrich Grotefend) इस लिपि को पढ़ने में सफल हुए। तत्पश्चात् बेबिलोनिया के लेखों को पढ़ने का श्रेय मुख्यतया रालिन्सन (Rawlinson) को है।

इसमें रेखाएँ प्रायः कोण वाली हैं। खड़ी, पड़ी लकीरें हैं। यह भावमूलक लिपि थी। बाद में असीरिया, फारस आदि में अर्ध-अक्षरात्मक हो गई। यह ऊपर से नीचे और दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। बाद में बाएँ से दाएँ भी लिखी जाने लगी।

२. हीरोग्लाइफिक (Hieroglyphic) **लिपि**—इसको गूढ़ाक्षर, बीजाक्षर, चित्राक्षर, पवित्राक्षर आदि कहते हैं। इस लिपि में मिस्री भाषा के अभिलेख ४ हजार ई० पू० के मिलते हैं। यूनानियों ने इसका यह नाम रखा था। इसका मूल अर्थ था—खुदे हुए पवित्र अक्षर। मन्दिरों की दीवारों आदि पर लेख खोदने में इसका प्रयोग होता था। यह पहले चित्रात्मक थी, फिर भावात्मक हुई और अन्त में अक्षरात्मक हुई। इसमें केवल व्यंजन थे, स्वर नहीं। यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। बाद में बाएँ से दाएँ भी लिखी जाती थी। 'हंस' का चित्र ही बाद में हंस-बोधक शब्द हो गया। इसी प्रकार अन्य शब्द बने। इसका प्रयोग ४ हजार ई० पू० से छठी सदी ई० तक मिलता है।

३. क्रीटी (Cretan) **लिपियाँ**—ये आज तक नहीं पढ़ी जा सकी हैं। ये लिपियाँ क्रीट के अभिलेखों में मिलती हैं। ये दोनों प्रकार की हैं—चित्रात्मक और रेखात्मक। चित्रात्मक के अभिलेख ३ हजार ई० पू० से १७०० ई० पू० तक मिलते हैं और रेखात्मक लिपि के १७०० ई० पू० से। यह कुछ अंशों में भावात्मक है और कुछ अंशों में ध्वन्यात्मक। इसमें बाएँ से दाएँ और कभी दोनों ओर से लिखा जाता था। चित्रात्मक में १३५ चित्र मिलते हैं, रेखात्मक में ९० चिह्न। रेखात्मक लिपि बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी। यह १२०० ई० पू० में समाप्त हो गई।

४. सिन्धुघाटी लिपि (Indus Script)—यह भारतीय लिपि है। इसके प्राचीन

अवशेष सिन्धु-घाटी से मिले हैं। इसमें मोहनजोदड़ो (सिंध प्रान्त के लरकाना जिले में) और हरप्पा (पंजाब के मांटगोमरी जिले में) से प्राप्त सीलें हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के चिह्न हैं। यह आज तक नहीं पढ़ी गई है। इसका समय ४००० ई० पू० से २५०० ई० पू० तक माना जाता है। इनमें कुछ चिह्न चित्रात्मक हैं और कुछ अक्षरात्मक। इस लिपि को भावलिपि और ध्वनिलिपि का संगम कह सकते हैं। इसमें प्राप्त चिह्नों की संख्या के विषय में भी मतभेद है। तीन मत प्रमुख हैं—चिह्नों की संख्या—(१) लैंग्डन के अनुसार—२२८, (२) हंटर के अनुसार—२५३, (३) स्मिथ के अनुसार—३९६।

चित्रात्मक चिह्नों में कुछ त्रिकोण, चतुष्कोण, खंभा, गुणनचिह्न, डमरू आदि के तुल्य हैं। अक्षर-चिह्नों में कुछ ब्राह्मी के क, ख, ग आदि के तुल्य हैं, कुछ ब्राह्मी अंकों के तुल्य।

इस लिपि की उत्पत्ति के विषय में तीन मत हैं। ये मत अपुष्ट आधारों के कारण मान्य नहीं हैं। ये मत हैं—**(१) द्रविड उत्पत्ति**—प्रस्तावक जान मार्शल आदि। **(२) सुमेरियन उत्पत्ति**—प्रस्तावक एल० ए० बैडेल और डॉ० प्राणनाथ। **(३) आर्य या असुर उत्पत्ति**—सिन्धुघाटी में रहने वाले आर्यों या असुरों ने इस लिपि का निर्माण किया। एलामाइट, मिश्री और सुमेरी लिपि से साम्य का कारण है—भारत से इन देशों में इस लिपि का जाना।

५. हिटाइट (Hittite) **लिपि**—इसके हजारों कीलाक्षर और चित्रात्मक अभिलेख सीरिया और एशिया माइनर में बोगाजकोई से मिले हैं। इन अभिलेखों का समय २ हजार ई० पू० के लगभग माना जाता है। प्रो० ह्राज्नी और प्रो० स्टुर्टवेन्ट ने इस लिपि पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। ६०० ई० पू० के बाद इसका प्रयोग नहीं मिलता है। यह मूलत: चित्रात्मक थी, बाद में कुछ भावात्मक और कुछ ध्वन्यात्मक हो गई। इसमें ४१९ चिह्न हैं। इसे कभी दाएँ से बाएँ और कभी बाएँ से दाएँ लिखते थे। प्रो० डिरिंजर इसकी उत्पत्ति मिश्री या क्रीटी से न मानकर स्थानीय उत्पत्ति मानते हैं। वे इसे मिस्री से प्रभावित मानते हैं।

६. चीनी (Chinese) **लिपि**—चीनी किंवदन्ती के अनुसार फू-हे नामक एक व्यक्ति ने ३२०० ई० पू० में इस लिपि का आविष्कार किया था। चीनी भाषा के प्रसिद्ध विश्वकोश 'फा युआन चु लिन्' (६६८ ई०) में 'त्सं-की' को चीनी भाषा का आविष्कारक माना गया है। इसका जन्म २७०० ई० पू० के लगभग हुआ था। चीनी लिपि की उत्पत्ति के बारे में अनेक मत प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे—(१) पीरू की लिपि के तुल्य किसी लिपि से, (२) क्यूनीफार्म लिपि से, (३) हीरोग्लाइफिक लिपि से, (४) सिन्धुघाटी आदि की चित्रलिपि से।

ये सभी मत पूर्णतया अनुमान पर आश्रित हैं। वस्तुत: भारतीय लिपियों के तुल्य चीनी लिपि का भी स्वतन्त्र रूप से चीन में ही उद्‌भव मानना अधिक उपयुक्त है। हर बात के लिए यूरोप की ओर खींचना शुद्ध धींगामस्ती है।

चीनी लिपि में अक्षर या वर्ण नहीं हैं। यह चित्रात्मक लिपि है। प्रत्येक शब्द के लिए अलग चिह्न हैं। इन चिह्नों को ४ भागों में बाँटा जा सकता है—(१) चित्रात्मक, (२) संयुक्त चित्रात्मक, (३) भावात्मक, (४) ध्वन्यर्थ-संयुक्त।

चीनी भाषा के प्रामाणिक शब्दकोश 'कांग-सि' (Kang-Hsi) में चीनी शब्दों की संख्या ४० हजार से अधिक है। प्रो० गाइल्स (Giles) के शब्दकोष में १०८५६ शब्द हैं। इसमें मूल-ध्वनियाँ ४०६ हैं। प्रो० सूथिल (Soothill) ने रेखाओं (Strokes) के अनुसार निकाला है कि इसमें १ से १७ रेखा वाले शब्द हैं। इसमें मूल शब्दों (Radicals) की संख्या २१४ है। विभिन्न अर्थों को स्पष्ट करने के लिए दो-दो शब्द मिला दिए जाते हैं। अब अधिक रेखाओं वाले शब्दों को सरल करके ५-७ रेखा वाला बनाया जा रहा है। अधिक प्रयुक्त ५०० शब्दों को सरल बनाया गया है।

७. सामी, आर्मेइक, फोनीशियन, हिब्रू लिपियाँ—सामी (Semitic) भाषा-परिवार की एक सामी लिपि थी। इसमें २२ वर्ण थे। इसकी दो शाखाएँ हुईं—उत्तरी सामी लिपि और दक्षिणी सामी लिपि। उत्तरी सामी लिपि से दो लिपियाँ विकसित हुईं—**आर्मेइक** (या अरमी, Armaic) और **फोनीशियन** (फोनीशी, Phoenician)। आर्मेइक में ८वीं सदी ई० पू० के अभिलेख सीरिया के सिन्दिली नामक स्थान से मिले हैं। यह उत्तरी सामी की सबसे मुख्य लिपि थी। इससे ही **हिब्रू** (Hebrew) लिपि निकली है। हिब्रू में पुरानी बाइबिल और कुछ अभिलेख १ हजार ई० पू० के लगभग मिलते हैं। **फोनीशियन** के सबसे पुराने अभिलेख ९वीं शताब्दी ई० पू० के मिलते हैं। यह फोनीशिया के व्यापारियों की लिपि थी। ईसवीय सन् के प्रारम्भ तक नष्ट हो गई।

दक्षिणी सामी लिपि से दक्षिणी अरबी और अरबी लिपि का विकास हुआ।

८. अरबी (Arabic) **लिपि**—इसका विकास सामी लिपि की दक्षिणी शाखा से हुआ है। इसके दो रूप हैं—दक्षिणी अरबी और अरबी। दक्षिणी अरबी अरब के दक्षिणी किनारे पर फैली है। इसके पुराने अभिलेख ८०० ई० पू० से लेकर छठी शताब्दी ई० तक के मिलते हैं। अरबी का प्राचीनतम अभिलेख ५१२ ई० पू० का है। ७वीं सदी ई० से इसका विशेष प्रचार हुआ। अरबी का विकास मक्का, मदीना, बसरा, कूफा आदि नगरों में हुआ। ७वीं-८वीं सदी ई० में इसके दो रूप हो गए—**(१) कूफी**—मेसोपोटामिया के कूफा नगर में विकसित हुई। यह कलात्मक लिपि है। स्थायी अभिलेखों के लिए इसका प्रयोग होता है। **(२) नस्खी**—यह लिपि मक्का-मदीना में विकसित हुई। इसका प्रयोग सामान्य कार्यों एवं घसीट लिखने के लिए हुआ। यह अधिक प्रचलित हो गई। इसका ही विकसित रूप वर्तमान अरबी लिपि है।

अरबी में कुल २८ अक्षर हैं। यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती है। यह अरब, फारस, अफगानिस्तान आदि में प्रचलित है। तुर्की में अरबी को हटाकर रोमन को अपना लिया गया है। फारसी में ४ अक्षर और जोड़ देने से ३२ अक्षर हो गए हैं। उर्दू की लिपि अरबी ही है। इसमें फारसी के ३२ अक्षरों में ५ नए अक्षर और जोड़ देने से अक्षर-संख्या ३७ हो गई। उर्दू का प्रचार पाकिस्तान, भारत आदि में है। घसीट लिखने के लिए यह बहुत अच्छी पड़ती है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह नागरी से बहुत घटिया सिद्ध होती है।

९. ग्रीक (यूनानी, Greek) **लिपि**—इसको यूनानी लिपि भी कहते हैं। यूरोप की वर्तमान सभी लिपियाँ ग्रीक लिपि से ही विकसित हुई हैं। ग्रीक की उत्पत्ति उत्तरी

सामी से विकसित फोनीशियन (फोनीशी) भाषा से हुई। कुछ इसको आर्मेइक की पुत्री एशियानिक से उत्पन्न मानते हैं। फोनीशियन फोनीशी व्यापारियों की भाषा थी। ये सामी लिपि का प्रयोग करते थे। ग्रीक वालों ने इस लिपि को अपनाकर इसमें आवश्यक परिवर्तन किए। डॉ० डिरिंजर के अनुसार ग्रीक में सामी की ३ विशेषताएँ हैं—(१) ग्रीक अक्षरों के स्वरूप में साम्य, (२) सामी के तुल्य क्रम, (३) सामी के तुल्य अधिकांश अक्षरों के नाम। सामी में A, O, I (अ, ओ, इ) के लिए प्रयुक्त ध्वनियाँ (अलेफ, वाव, ये) व्यंजन और स्वर का बोध कराती थीं। इन्हें ग्रीक वालों ने स्वर बना लिया और व्यंजन के बाद जोड़कर TA, TO, TI (ता, तो, ति) आदि वर्ण बनाए। इस प्रकार त् + आ आदि के बोध से स्वनिम-सिद्धान्त का ज्ञान प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार 'हे' और 'ऐन' को भी उन्होंने स्वर बना लिया। सामी में अप्राप्त ध्वनियों के लिए नए वर्ण भी गढ़े गए। बाद में ह्रस्व, दीर्घ आदि स्वरों के भेद, स्वर-चिह्न और विराम-चिह्नों आदि के लिए संकेत-चिह्नों (Diacritical marks) का भी विकास किया गया।

ग्रीक से यूरोप की सभी लिपियों के विकास का क्रम प्रायः इस प्रकार था। ग्रीक लोगों से यह लिपि भूमध्य-सागर के लोगों ने सीखी। रोमन लोगों ने इसको एत्रुस्कन (Etruscan) भाषा के माध्यम से प्राप्त किया। इससे लैटिन का विकास हुआ और लैटिन से उत्तरी यूरोप में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सभी लिपियों का विकास हुआ। दूसरी ओर मध्य युग में ग्रीक लिपि बल्गेरिया, सर्बिया और रूस में पहुँची।

ग्रीक लिपि में २४ चिह्न हैं। यह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है। इसके पुराने अभिलेख ९वीं सदी ई० पू० तक के मिलते हैं। ये थेरा द्वीप से मिले थे। इनमें कुछ दाएँ से बाएँ और कुछ बाएँ से दाएँ लिखे हुए हैं। तत्पश्चात् कुछ अभिलेख उत्तरी मिश्र के अबूसिम्बेल (७वीं सदी ई० पू०), कोरिन्थ और एथेन्स (छठी सदी ई० पू०) से मिले हैं।

यूरोप की भाषाओं में वर्णमाला के लिए अल्फाबेट (Alphabet) शब्द है। यह शब्द ग्रीक भाषा के दो प्रारम्भिक वर्ण अल्फा और बेटा से बना है। ग्रीक के अल्फा, बेटा, गम्मा, डेटा शब्द सामी भाषा के अलेफ, बेथ, गमेल और दामेथ के ही रूपान्तर हैं। ये शब्द सामी भाषा में सार्थक हैं। इनके क्रमशः अर्थ हैं—बैल, मकान, ऊँट और कनात का दरवाजा। ग्रीक में ये अक्षर निरर्थक हैं। इससे ज्ञात होता है कि सामी लिपि से ग्रीक लिपि का विकास हुआ है। ग्रीक के ही ये अक्षर लैटिन और अंग्रेजी में A, B, C, D हुए हैं।

सामी से ग्रीक लिपि की उत्पत्ति के विषय में एक आपत्ति उठाई गई है कि सामी दाएँ से बाएँ लिखी जाती है और ग्रीक बाएँ से दाएँ, यह कैसे हुआ? इसका समाधान यह है कि दक्षिणी सामी के कुछ अभिलेख छठी सदी ई० पू० के प्राप्त हुए हैं। ये हल की जुताई की तरह दाएँ से बाएँ और बाएँ से दाएँ चालू हैं। इस प्रकार दोनों ओर लिखने का भी सामी में प्रचलन था। सामी में आगे चलकर दाएँ से बाएँ लिखना ही शेष रह गया, ग्रीक आदि में बाएँ से दाएँ।

१०. लैटिन या रोमन (Latin, Roman) **लिपि**—लैटिन को ही रोमन लिपि भी कहते हैं। यह आज संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण लिपि है। विश्व के अधिकांश देशों में

इसका प्रचलन है। ऊपर बताया गया है कि उत्तरी सामी से विकसित फोनीशियन लिपि से ग्रीक लिपि का जन्म हुआ। रोम वालों ने एत्रुस्कन (Etruscan) भाषा के माध्यम से ग्रीक लिपि प्राप्त की। उसका ही विकसित रूप लैटिन या रोमन लिपि है। एत्रुस्कन भाषा इटली और उसके समीपस्थ प्रदेशों में बोली जाती थी। यह ९वीं सदी ई० पू० में एशिया माइनर से इटली में आई थी। एशिया माइनर वालों ने इसे ग्रीस से प्राप्त किया था। लैटिन के पुराने लेख ४र्थ शताब्दी ई० पू० से मिलते हैं। ये रोम में मिट्टी के बर्तन पर खुदे हैं। ग्रीक-रोमन लिपि से ही जर्मन लिपि भी निकली है, पर इसकी लिपि में पर्याप्त अन्तर है। इसको **रूनी** (Runes) लिपि कहते हैं। ईसाई मिशन के प्रभाव से जर्मनी वालों ने ३०० ई० के बाद रूनी लिपि को छोड़कर रोमन लिपि को ही अपना लिया।

एत्रुस्कन भाषा से लैटिन में २१ अक्षर लिए गए। सिसरो के समय में ग्रीक से २ अक्षर y और z लिए गए। बाद में ध्वनियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ३ अक्षर J, U, W और बढ़ाए गए। इस प्रकार लैटिन में २६ अक्षर हो गए। यह बाएँ से दाएँ लिखी जाती है।

रोमन लिपि यान्त्रिक टंकण आदि के लिए बहुत सुविधाजनक पड़ती है। व्यंजन और स्वर की मात्राएँ अलग-अलग लिखी जाने से प्रत्येक ध्वनि को अलग दिखाया जा सकता है। उपयोगिता की दृष्टि से इसे सर्वोत्तम लिपि माना जाता है। अतएव इसका प्रचार यूरोप के अतिरिक्त अन्य देशों में भी हो गया है। इसमें कुछ मौलिक त्रुटियाँ हैं। जैसे—(१) कुछ अक्षर व्यर्थ हैं—c, q, x। (२) कुछ ध्वनियों के लिए चिह्न नहीं हैं। जैसे—श्, थ्, ङ्, च् आदि। इनके लिए दो ध्वनियों को मिलाकर काम चलाया जाता है, sh, th, ng, ch आदि। (३) एक ध्वनि के लिए अनेक चिह्न हैं। अ के लिए a, i, u, o, जैसे—a, bird, but, come। (४) एक ध्वनि के अनेक उच्चारण हैं। जैसे—Put (पुट)—But (बट) में u का उ और अ, child (चाइल्ड)-chemistry (केमिस्ट्री) में ch का च् और क्। (५) ह्रस्व और दीर्घ के अन्तर के लिए अक्षर नहीं हैं।

१४.४. भारत में लिपिज्ञान एवं लेखनकला

भारत में प्राचीन समय से लेखनकला प्रचलित थी। ऋग्वेद में 'लिख्' धातु के कई रूपों का प्रयोग है। अथर्ववेद में चार स्थानों पर लिखने की कला का उल्लेख है। इसमें सुलेख, ऋण-सम्बन्धी लेख और आकृतिमूलक लेख का उल्लेख है।

(क) अजैषं त्वा संलिखितम्। (अथर्ववेद ७-५०-५) (सुलेख)
(ख) यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन। (अथर्व० १२-३-२२) (लेन-देन का लेख)
(ग) अप शीर्षण्यं लिखात्। (अथर्व० १४-२-६८) (ऊपर की रेखाएँ)
(घ) क एषां कर्करी लिखत्। (अथर्व० २०-१३२-८) (चित्रात्मक लेख)

ब्राह्मण ग्रन्थों में लिख् धातु के ये प्रयोग मिलते हैं—लिखति-लिखते, लिलेख, अलीलिखत्, लेखी:, लिखित, लिख्य। इनसे यह स्पष्ट नहीं है कि लेखनकला का क्या स्वरूप था? लिपि क्या थी? लिख् धातु से इतना स्पष्ट है कि लिखने का काम होता था और किसी नोकीली धातु से अक्षर लिखे या खोदे जाते थे।

ऋग्वेद में 'अष्टकर्णी' हजार गायों के दान देने का उल्लेख है।[1] इसमें अष्टकर्णी से यह स्पष्ट है कि गायों के कान पर ८ अंक लिखा होता था। यजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता और अथर्ववेद में १ से १०० तक की गिनती, पहाड़ा, एक से दश शंख तक की संख्याओं के नाम—एक, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त, परार्ध (दश शंख) मिलते हैं।[2] इन संख्याओं का ज्ञान लेखन-कला के बिना संभव नहीं है। वेदों आदि में काल के सूक्ष्म भेदों का उल्लेख है। यह भी बिना लिखे समझना संभव नहीं है।

अथर्ववेद में 'अक्षर' शब्द का छोटी इकाई के रूप में उल्लेख है। इससे ही विभिन्न छन्दों की मात्राएँ और वर्ण गिने जाते थे।

अक्षरेण मिमते सप्त वाणीः। (अथर्व० ९-१०-२)

'सहस्राक्षर' (अथर्व० ९-१०-२१) से ज्ञात होता है कि १ हजार वर्णों वाले मन्त्रादि होते थे। अथर्ववेद (१९-२१-१) में ७ छन्दों का उल्लेख है। यजुर्वेद में ११, १४ और २२ छन्दों तक का उल्लेख है।[3] साथ ही उनके पादों आदि का भी उल्लेख है। तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक आदि संहिताओं में छन्दों के पाद और अक्षरों की गणना भी दी गई है।

ग्रन्थों का साक्ष्य—(१) बौद्ध-ग्रन्थ 'ब्रह्मजाल-सुत्त' (६ठी सदी ई० पू०) में 'अक्खरिका' (अक्षरिका) का उल्लेख है। इसमें बच्चों को पीठ पर लिखे अक्षरों को पहचानना होता था। (२) 'सुत्तान्त' (सूत्रान्त, ६ठी सदी ई० पू०) में भिक्षुओं को अक्खरिका खेल न खेलने का आदेश है। (३) 'विनयपिटक' (४०० ई० पू० से पूर्व) में लेखन-कला की प्रशंसा की गई है। (४) 'महावग्ग' और जातकों में लेखन-कला के अध्यापन और लेखन-सामग्री का उल्लेख है। (५) 'ललितविस्तर' में उल्लेख है कि गुरु विश्वामित्र ने गौतम बुद्ध को तख्ती पर स्वर्ण-कलम से लिखना सिखाया। (६) जातकों में नियमों को सुवर्णपत्रों पर खुदवाने, सरकारी लेख एवं ऋणपत्रों को लिखवाने का उल्लेख है। (७) रामायण (६०० ई० पू०), महाभारत (५०० ई० पू०), अर्थशास्त्र (४र्थ सदी ई० पू०) में अनेक स्थलों पर लेखन-कला का उल्लेख है। लेख, लेखक, लेखन आदि शब्दों का प्रयोग है।

आचार्य पाणिनि (५वीं सदी ई० पू०) ने स्पष्ट रूप से लिपि, लिबि, लिपिकर, ग्रन्थ, यवनानी (यूनानी लिपि), स्वरित चिह्न आदि का उल्लेख किया है।[4] पशुओं के कानों पर पहचान के लिए ५, ८ आदि अंक लिखने का उल्लेख पाणिनि ने किया है।[5] लिपि को लिबि भी कहते थे। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१-५) में लिपि का उल्लेख है।

---

१. सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः। (ऋग्वेद १०-६२-७)

२. यजुर्वेद १७-२, तैत्तिरीय संहिता ४-४-११-३ और ४, अथर्ववेद ८-८-७; १०-८-२४।

३. यजुर्वेद २१.१२ से २२; २३.३३ से ३४; २८.२४ से ४५।

४. दिवाविभा···लिपिलिबि० (अष्टा० ३-२-२१), इन्द्रवरुण० (अष्टा० ४-१-४९), यवनाल्लिप्याम् (वार्तिक, ४-१-४९), अधिकृत्य कृते ग्रन्थे (अष्टा० ४-३-८७)।

५. विस्तृत विवरण के लिए देखें—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल-कृत 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष', पृष्ठ ३०६-३०७।

कौटिल्य ने (अर्थ० १-१२) सांकेतिक लिपि (Short Hand Writing) के लिए 'संज्ञालिपि' नाम दिया है।

बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अनेक लिपियों का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ 'ललितविस्तर' में ६४ लिपियों के नाम हैं। जैन ग्रन्थ 'पन्नवणा-सूत्र' तथा 'समवायांग सूत्र' में १८ लिपियों के नाम हैं। इनमें विशेष महत्त्वपूर्ण लिपियाँ हैं—(१) बंभी, ब्रह्मी (ब्राह्मी), (२) खरोट्ठी (खरोष्ठी), (३) जवणाणिया (यवनानी), (४) अंकलिवि (अंकलिपि), (५) गणितलिवि (गणितलिपि), (६) माहेसरी (माहेश्वरी), (७) हूण-लिपि, (८) चीनलिपि, (९) दरदलिपि, (१०) द्राविड़ी लिपि।

विदेशी लेखों का साक्ष्य—(१) सिकन्दर के सेनापति निआर्कस (३२६ ई० पू०) ने भारत का वृत्तान्त लिखा था। एरिअन ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में इसका सारांश दिया है। इससे भारत में कागज आदि के उपयोग का ज्ञान होता है। (२) मेगस्थनीज (३०५ ई० पू०) ने अपने ग्रन्थ 'इण्डिका' में भारत में सड़कों पर मील के पत्थर गड़े होने का उल्लेख किया है। 'जन्मकुण्डली' का भी उल्लेख किया है। (३) चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने भारत में लिपिज्ञान की प्राचीनता का उल्लेख किया है। (४) चीनी विश्वकोष 'फा युआन चु लिन्' (६६८ ई०) में ब्राह्मी का उल्लेख है। इसका आविष्कारक ब्रह्मा को माना है।

अभिलेख साक्ष्य—प्राचीन शिलालेखों आदि से भारत में प्राचीन समय से लेखनकला का ज्ञान होता है। (१) ईरानी सम्राट् दारा प्रथम (५८१-४८५ ई० पू०) के बहिस्तून (सं० भगस्थान) अभिलेख में उत्कीर्ण लेखन को 'दिपि' (लिपि) कहा है। (२) मोहनजोदड़ो और हरप्पा के अभिलेखों का समय ४ हजार ई० पू० के लगभग माना जाता है। (३) अशोक के शिलालेखों से पूर्व के २ छोटे अभिलेख मिले हैं—(क) अजमेर जिले के 'बड़ली' गाँव से, (ख) नेपाल की तराई में 'पिपरावा' स्थान से। बड़ली वाला अभिलेख एक स्तम्भ के टुकड़े पर है। इसमें प्रथम पंक्ति में—'वीराय भगवते', द्वितीय पंक्ति में—'चतुरासिति वस' अर्थात् वीरस्य भगवतः चतुरशीतिवर्षे (भगवान् वीर या महावीर के निर्वाण के ८४वें वर्ष में)। इससे इसका समय (५२७ ई० पू०-८४) ४४३ ई० पू० होगा। पिपरावा वाले लेख का समय श्री गौ० ही० ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' (पृष्ठ २-३) में ४८७ ई० पू० के कुछ बाद का माना है।

इससे स्पष्ट होता है कि ई० पू० ६ठी या ७वीं सदी में भारत में लेखनकला एवं लिपि का विस्तृत प्रचार था। स्थायी लेख के लिए शिला, स्तम्भ, सुवर्ण-रजत-ताम्र आदि के पत्र, पकी मिट्टी के सिक्के आदि प्रयुक्त होते थे। प्रारम्भ में ग्रन्थों आदि के लेखन के लिए पर्ण (ताड़पत्र आदि) का प्रयोग होता था। बाद में भूर्ज (भोजपत्र), लकड़ी, वस्त्र, चमड़ा आदि का प्रयोग हुआ। कागज का प्रयोग बहुत बाद में हुआ।

पाश्चात्त्य विद्वानों ने 'श्रुति' (श्रवण-परंपरा, वेद) शब्द को लेकर बहुत वितण्डा खड़ा किया है और निर्णय दिया है कि भारत में केवल मौखिक परंपरा श्रवण-श्रावण (श्रुति) की थी। वे लेखनकला से अनभिज्ञ थे। यह बात सर्वथा असंगत है। आज भी वेद आदि के लिए श्रवण-परंपरा को ही महत्त्व दिया जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है

कि आज भी लिपि, लेखन, कागज आदि नहीं हैं। यह केवल प्राथमिकता की बात थी। गुरु-शिष्य-परंपरा से श्रवण-पठन अधिक प्रामाणिक होता था। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिन्धुघाटी लिपि लगभग ४ हजार वर्ष ई० पू० से तथा अन्य लिपियाँ ७वीं या ६ठी सदी ई० पू० से पहले से ही प्रचलित थीं।[1]

१४.५. खरोष्ठी लिपि (Kharosthi Script)

यह भारतीय लिपि है। इसका प्रचलन पश्चिमोत्तर भारत में था। इसमें सबसे प्राचीन अभिलेख सम्राट् अशोक के मिलते हैं। इससे प्राचीन कोई अभिलेख खरोष्ठी में नहीं मिलता है। अशोक के खरोष्ठी अभिलेख शाहबाजगढ़ी (जिला यूसुफजई, पंजाब) और मानसेरा (जिला हजारा, पंजाब) में प्राप्त हुए हैं। प्रो० ब्यूलर (G. Buhler) के मतानुसार खरोष्ठी के अभिलेख ३५० ई० पू० से २०० ई० तक के मिलते हैं। अशोक के शिलालेखों के अतिरिक्त भारत-यूनानी सिक्के, शक और कुषाणों के अभिलेख भी खरोष्ठी लिपि में हैं।

खरोष्ठी का नामकरण—इसके नामकरण के विषय में पर्याप्त विवाद है। इस विषय में अनेक आनुमानिक मत प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें कोई भी मत पुष्ट प्रमाणों पर आश्रित नहीं है। अतः इन मतों को आनुमानिक मानते हुए विचार किया जाता है। इनमें उल्लेखनीय मत ये हैं---

१. खरोष्ठ नामक व्यक्ति या आचार्य ने इसका आविष्कार किया। इसका समर्थन चीनी विश्वकोष 'फा युआन चु लिन' द्वारा होता है। खरोष्ठ (गधे के तुल्य ओठ) नाम संभवत: वैदिक शुन:शेप नाम के तुल्य उपहास-मूलक नाम था।

२. गधे की खाल पर लिखी जाने से ईरानी में इसको 'खरपोश्त' कहते थे। उसका अपभ्रंश खरोष्ठ है। इससे खरोष्ठी बनी।

३. डॉ० राजबली पाण्डेय के मतानुसार इस लिपि के अक्षर खर (गधा) के ओष्ठ के समान बेढंगे होते थे, अत: खरोष्ठी नाम पड़ा।

४. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के अनुसार हिब्रू में लेख-वाचक खरोशेथ (Kharosheth) शब्द है। उससे खरोष्ठी बना।

खरोष्ठी की उत्पत्ति—इस विषय में मुख्यतया दो मत हैं—(१) यह आर्मेइक (Armaic) लिपि से निकली है। (२) यह भारतीय लिपि है। इस विषय में प्रसिद्ध लिपिवेत्ता प्रो० ब्यूलर का मत अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उन्होंने प्रथम मत के समर्थन के लिए चार तर्क दिए हैं—

१. खरोष्ठी लिपि आर्मेइक लिपि के तुल्य दाएँ से बाएँ लिखी जाती है।

२. खरोष्ठी के ११ अक्षर बनावट की दृष्टि से आर्मेइक लिपि के अक्षरों से बहुत

---

1. विस्तृत विवरण के लिए देखें : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, प्राचीन लिपिमाला, पृष्ठ २ से १६।

मिलते हैं। दोनों की इन ध्वनियों में भी साम्य है। ये ११ अक्षर हैं—क, ज, द, न, ब, य, र, व, ष, स, ह।

३. आर्मेइक लिपि खरोष्ठी से प्राचीन है।

४. तक्षशिला में आर्मेइक लिपि के शिलालेख भी मिले हैं। यह खरोष्ठी का क्षेत्र है।

श्री राजबली पाण्डेय का मत (यह भारतीय लिपि है) केवल तर्कों पर आश्रित है, अतः ग्राह्य नहीं हुआ है। इसकी उत्पत्ति किसी भारतीय भाषा से नहीं हुई है।

खरोष्ठी की विशेषताएँ तथा न्यूनताएँ

१. यह दाएँ से बाएँ लिखी जाती है। बाद में संभवतः ब्राह्मी के प्रभाव से बाएँ से दाएँ भी लिखी जाने लगी।

२. इसमें ३७ वर्ण हैं—५ स्वर और ३२ व्यंजन। स्वर—अ, इ, उ, ए, ओ। व्यंजन—क, ख, ग, घ। च, छ, ज, झ, ञ। ट, ठ, ड, ढ, ण। त, थ, द, ध, न। प, फ, ब, भ, म। य, र, ल, व। श, ष, स, ह। इसमें दीर्घ स्वर—आ, ई, ऊ, ऐ, औ और ङ व्यंजन नहीं हैं।

२. आर्मेइक लिपि में केवल २२ अक्षर थे। उनको ३७ बनाना खरोष्ठ मुनि या आचार्य का काम है।

४. खरोष्ठी में ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं का अन्तर नहीं है। इसमें संयुक्त अक्षरों को लिखने की भी स्पष्ट सुविधा नहीं है। अतः यह भारत में २०० ई० के बाद नहीं चल सकी।

१४.६. ब्राह्मी लिपि (Brahmi Script)

यह पूर्णतया भारतीय लिपि है। इसके प्राचीनतम लेख ३५० ई० पू० से लेकर ३०० ई० तक मिलते हैं। सबसे प्राचीन लेख 'एरण' से प्राप्त सिक्का है, जो ३५० ई० पू० का है। इसके पश्चात् अशोक के शिलालेख और स्तम्भ-लेख आदि हैं। इनका समय २५० ई० पू० है। ये कालसी, दिल्ली, जौगड़, गिरनार, शिद्दापुर से प्राप्त हुए हैं। तत्पश्चात् ईसा-पूर्व तक ब्राह्मी लिपि में ये अभिलेख मिले हैं—घसुन्दी (२५० ई० पू०), दशरथ (२०० ई० पू०), भरहुत (१५० ई० पू०), मथुरा (१५० ई० पू० से १०० ई० पू०), हाथीगुम्फा (१६० ई० पू०), नानघाट (१५० ई० पू०)। ईसा के पश्चात् ३५० ई० तक ब्राह्मी लिपि में विशेष उल्लेखनीय अभिलेख ये हैं—मथुरा, कुषाण, रुद्रदामन्, सातकर्णि, नासिक, पुलुमायी, जगय्यपेट्ट। प्रो० ब्यूलर ने विशेष अध्ययन के बाद प्रस्तुत किया है कि ब्राह्मी लिपि में ४१ अक्षर थे—९ स्वर और ३२ व्यंजन।

स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ (९)।

व्यंजन— क, ख, ग, घ। च, छ, ज, झ, ञ। ट, ठ, ड, ढ, ण। त, थ, द, ध, न। प, फ, ब, भ, म। य, र, ल, व। श, ष, स, ह (३२)।

इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मी में खरोष्ठी से ४ ध्वनियाँ अधिक हैं—आ, ई, ऊ, ऐ। दोनों में ङ अक्षर नहीं है।

ब्राह्मी का नामकरण—ब्राह्मी नाम के लिए ३ व्युत्पत्तियाँ बताई गई हैं—

१. ब्रह्म या ब्रह्मा से उत्पन्न हुई है।

२. ब्रह्म (वेद या ज्ञान) की रक्षा के लिए इसे बनाया गया।

३. ब्राह्मणों ने इसे बनाया या प्रयुक्त किया।

उपर्युक्त तीनों मतों में प्रथम मत अधिक उचित प्रतीत होता है। ब्रह्म से सम्बद्ध ज्ञान आदि को ब्राह्म या ब्राह्मी कहा जाता था। यजुर्वेद (अ० ३१ मन्त्र २०, २१) में ब्रह्म से सम्बद्ध अर्थ में ब्राह्म और ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है।[1] चीनी विश्वकोष 'फा युआन चु लिन्' में ब्राह्मी लिपि का निर्माता ब्रह्म या ब्रह्मा नामक आचार्य माना गया है। अमरकोषकार अमरसिंह ने संस्कृत को ब्राह्मी एवं भारती अर्थात् भारतीय भाषा कहा है।[2] इस भाषा का प्रयोग वेद-ज्ञान की रक्षा के लिए किया गया। भारतीय विद्वानों और ब्राह्मणों ने इसका प्रयोग किया। अत: पूर्वोक्त तीनों व्युत्पत्तियाँ कुछ हद तक ठीक बैठती हैं।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति—ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के विषय में बहुत विवाद है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति फोनीशी लिपि, सामी लिपि या चीनी लिपि से माना है। भारतीय विद्वानों ने इसकी भारतीय उत्पत्ति मानी है। विचार करने से ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानों के मत अत्यन्त अपुष्ट आधारों पर हैं। कुछ केवल मनोरंजक कल्पना-मात्र रह गए हैं। संक्षेप में इनका विवेचन प्रस्तुत है—

१. चीनी लिपि से—फ्रेंच विद्वान् कुपेरी ने चीनी से ब्राह्मी की उत्पत्ति मानी है। चीनी और ब्राह्मी पूर्णतया भिन्न हैं। चीनी चित्रलिपि है और ब्राह्मी ध्वनि-लिपि है। दोनों के वर्णों और ध्वनियों में कोई साम्य नहीं है। यह मत अब केवल मनोरंजन के लिए उद्धृत किया जाता है।

२. ग्रीक या फोनीशी लिपि से—इस मत के समर्थक हैं—विल्सन, प्रिंसेप, अल्फ्रेड मूलर, सेनार्ट आदि। इनका मत है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय से यूनानियों से सम्पर्क हुआ और उनसे यह लिपि सीखी। इस विषय में उल्लेखनीय है कि सिकन्दर का आक्रमण ३२७ ई० पू० में हुआ था। इससे पूर्व भारत में लेखन-कला का प्रचार था। ब्यूलर और डिरिंजर का भी यही मत है। सिकन्दर से पूर्व भारत में भारतीय लिपि प्रचलित थी, अत: उसके बाद लिपि का प्रारम्भ मानना असंगत है।

३. सामी से उत्पत्ति—ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति सेमिटिक (सामी) भाषाओं से हुई है। इस मत के समर्थक ब्यूलर, विलियम जोन्स, वेबर, टेलर आदि हैं। डॉ० डेविड डिरिंजर ने भी 'द अल्फाबेट' पुस्तक में ब्यूलर का समर्थन किया है। डिरिंजर ने अपने समर्थन में ४ तर्क दिए हैं—

१. सामी और ब्राह्मी लिपियों में साम्य है। २. सिन्धुघाटी लिपि चित्रात्मक लिपि है। उससे वर्णात्मक लिपि नहीं निकल सकती है। ३. ब्राह्मी लिपि पहले दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। ४. भारत में पाँचवीं शती ई० पू० से पहले के लेख नहीं मिलते हैं।

---

१. रुचाय ब्राह्मये। (यजु० ३१-२०), रुचं ब्राह्मम्०। (यजु० ३१-२१)

२. ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती। (अमरकोष काण्ड-१ शब्दादिवर्ग)

समीक्षा—(१) सामी और ब्राह्मी में लिपि का साम्य नाममात्र को है। जो समता है, वह भी क्लिष्ट-कल्पना है। सामी दाएँ से बाएँ लिखी जाती है, ब्राह्मी बाएँ से दाएँ। सामी के संकेत अपूर्ण और अपर्याप्त हैं। सामी में केवल २२ वर्ण हैं, ब्राह्मी में ४१। सामी में स्वर और व्यंजनों का कोई क्रम नहीं है। आदि से अन्त तक स्वर और व्यंजनों की खिचड़ी है। ब्राह्मी में स्वर और व्यंजन पृथक्-पृथक् हैं। स्वरों में भी मूल स्वर, बाद में संयुक्त स्वर। व्यंजन भी स्थान और प्रयत्न के अनुसार क्रमबद्ध हैं। (२) प्रारम्भ में दिखाया जा चुका है कि चित्रात्मक और भावात्मक लिपि से ही ध्वनि-लिपि का विकास हुआ है। इसी प्रकार मोहनजोदड़ो की लिपि से ब्राह्मी का विकास भारतीय रूप में पूर्ण संभव है। (३) आज तक ब्राह्मी के तीन अभिलेखों में ही कुछ अंश दाएँ से बाएँ लिखे मिलते हैं। इसका कारण ज्ञात होता है कि इन पर खरोष्ठी का कुछ प्रभाव था। अशोक आदि के सारे अभिलेख बाएँ से दाएँ ही लिखे हुए हैं। इनकी संख्या बहुत बड़ी है। (४) सिन्धुघाटी के अभिलेख ५०० ई० पू० से पहले के हैं। अन्य अभिलेख भावी खुदाइयों आदि पर निर्भर हैं।

ब्राह्मी लिपि की भारतीयता के कारण—(१) विश्व की किसी भाषा में स्वरों और व्यंजनों का इस प्रकार का क्रम नहीं है। (२) इसमें केवल भारतीय ध्वनियों का समावेश है। (३) संयुक्त वर्णों को स्पष्ट रूप में सूचित करना ब्राह्मी की विशेषता है। (४) स्वर की मात्राओं को व्यंजन के साथ जोड़ने की विशेषता केवल ब्राह्मी में है। (५) स्वर और व्यंजन के इतने पूर्ण संकेत अन्य किसी भाषा में नहीं हैं। (६) कोई भारतीय परम्परा इस लिपि को बाहरी नहीं मानती। (७) अंक-प्रणाली और दशमलव की पद्धति भारतीयों की वैज्ञानिकता के प्रतीक हैं। जो ऋषि अंक-प्रणाली का आविष्कार कर सकते हैं, वे वर्ण-लिपि का भी आविष्कार कर सकते हैं। (८) ब्राह्मी में वर्णों की जो गोल-रचना या वृत्तात्मकता है, वह अन्य किसी लिपि में नहीं है।

१४.७. ब्राह्मी से भारतीय लिपियों का विकास

ईसा पूर्व ३५० से लेकर ३५० ई० तक प्रयुक्त लिपि का नाम ब्राह्मी रहा। इसके पश्चात् ब्राह्मी लिपि के लिखने के दो प्रकार मिलते हैं, जिनके आधार पर ब्राह्मी की दो श्रेणियाँ मानी जाती हैं—(१) उत्तरी, (२) दक्षिणी। उत्तरी शैली का प्रचार विन्ध्य पर्वत के उत्तर में रहा और दक्षिणी का प्रचार उसके दक्षिण में। इस प्रकार उत्तरी भारत की लिपियों का विकास ब्राह्मी की उत्तरी शैली से हुआ और दक्षिणी भारत की लिपियों का विकास दक्षिणी शैली से हुआ।

१४.७. (क) ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित लिपियाँ

उत्तरी शैली से पाँच लिपियों का विकास हुआ। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

१. गुप्त-लिपि—गुप्तवंशी राजाओं के अभिलेख इसी लिपि में हैं। अतः इसे गुप्त-

लिपि कहा जाता है। इसका प्रचार चौथी और पाँचवीं शती ई० में रहा। इस लिपि के मुख्य अभिलेख हैं—प्रयाग-प्रशस्ति (३७५ ई०), बिलसद (४१४ ई०), इन्दौर (४६५ ई०)।

२. **कुटिल लिपि**—यह लिपि गुप्त-लिपि से विकसित हुई है। इसमें स्वरों की मात्राओं की आकृति कुटिल अर्थात् टेढ़ी है। अत: इसे कुटिल लिपि कहा गया है। इससे ही नागरी और शारदा लिपियों का विकास हुआ है।

३. **प्राचीन नागरी लिपि**—उत्तर भारत में इसका प्रचार ९वीं ई० के अन्तिम चरण से मिलता है। यह मूलत: उत्तरी लिपि है, परन्तु इसके प्राचीन अभिलेख ८वीं शती ई० से प्रारम्भ होकर १६वीं शती ई० के अन्तिम भाग तक दक्षिण में मिलते हैं। नागरी लिपि को ही '**देवनागरी**' लिपि भी कहते हैं। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से बंगला लिपि का विकास हुआ। पश्चिम शाखा से राजस्थानी, गुजराती, महाराष्ट्री और महाजनी आदि लिपियाँ विकसित हुईं। दक्षिण में इसको 'नन्दी नागरी' कहते हैं।

४. **शारदा लिपि**—इस लिपि का प्रचार पश्चिमोत्तर भारत के कश्मीर और पंजाब में हुआ। ८वीं शती ई० तक वहाँ कुटिल लिपि थी। उसी से शारदा लिपि निकली। शारदा का सबसे प्राचीन लेख १०वीं शती ई० का माना जाता है। वर्तमान समय की कश्मीरी टाकरी, गुरुमुखी, डोगरी आदि लिपियाँ इसी से निकली हैं।

५. **बंगला-लिपि**—इसकी उत्पत्ति प्राचीन नागरी से १०वीं शती ई० हुई। इससे नेपाली, वर्तमान बंगला, मैथिली और उड़िया लिपियाँ निकली हैं।

१४.७. (ख) ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से विकसित लिपियाँ

ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से ६ लिपियाँ विकसित हुई हैं। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

१. **पश्चिमी लिपि**—इसके लेख पाँचवीं शती ई० से ९वीं शती ई० तक मिलते हैं। यह लिपि गुजरात, काठियावाड़, नासिक, खानदेश, हैदराबाद, कोंकण, मैसूर आदि के लेखों में मिलती है। पाँचवीं शती ई० के लगभग इसका प्रवेश राजपूताना और मध्य-भारत में भी पाया जाता है। पश्चिमी प्रदेशों में मिलने के कारण इसको पश्चिमी लिपि कहते हैं।

२. **मध्यप्रदेशी लिपि**—यह लिपि मध्यप्रदेश, हैदराबाद के उत्तरी भाग और बुन्देलखण्ड में ५वीं से ८वीं शती ई० तक मिलती है। इस लिपि के अक्षरों के सिर चौखूँटे या सन्दूक की आकृति के होते हैं। इनका भीतरी भाग कभी खाली और कभी भरा हुआ है। अक्षरों की आकृति समकोणों वाली है।

३. **तेलुगु-कन्नड़ लिपि**—ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से इस लिपि का विकास हुआ है। इससे ही वर्तमान तेलुगु और कन्नड़ लिपियाँ निकली हैं। यह लिपि ५वीं शती ई० से १४वीं शती ई० तक बम्बई (वर्तमान महाराष्ट्र) प्रांत के दक्षिणी भाग में, आंध्र प्रांत के दक्षिणी भाग में, मद्रास के उत्तर-पूर्वी भाग में तथा मैसूर के कुछ भागों में प्रचलित थी। पाँचवीं से १४वीं शती ई० तक इसके कई रूप-भेद हुए।

४. **ग्रन्थ लिपि**—यह लिपि मद्रास में प्रचलित रही। ७वीं शती ई० से १५वीं शती

ई० तक इसके कई रूपांतर हुए। इससे वर्तमान ग्रन्थ लिपि निकली है। इससे ही मलयालम और तेलुगु लिपियाँ विकसित हुई हैं। इस क्षेत्र में तमिल लिपि का प्रचार रहा था, परन्तु वह अपूर्ण थी। अतएव संस्कृत के ग्रन्थों को लिखने के लिए इस लिपि का प्रयोग होता था। इसलिए इसका नाम 'ग्रन्थ' पड़ा।

५. कलिंग लिपि—कलिंग के आस-पास ७वीं से ११वीं शती ई० तक इसका प्रचार रहा। इसके प्राचीन लेख मध्यप्रदेशी लिपि में हैं और बाद के लेख नागरी, तेलुगु, कन्नड़ और ग्रन्थ लिपि में मिलते हैं।

६. तमिल लिपि—यह भी दक्षिणी ब्राह्मी से निकली है। इससे वर्तमान तमिल लिपि का विकास हुआ है। ७वीं सदी ई० से आज तक तमिल ग्रन्थ इसी लिपि में मिलते हैं। इसके अधिकांश अक्षर ग्रन्थ लिपि से मिलते-जुलते हैं। तमिल का ही घसीट रूप 'वट्टलुत्तु' लिपि है। इसके अक्षर प्राय: गोलाई लिए हुए होते हैं। यह ७वीं से १४वीं शती ई० तक मद्रास के पश्चिमी और दक्षिणी भाग में प्रचलित रही।

१४.८. देवनागरी लिपि

वर्तमान देवनागरी लिपि प्राचीन नागरी लिपि के पश्चिमी रूप से विकसित हुई है। नागरी लिपि को 'नागरी' और 'देवनागरी' दोनों नामों से सम्बोधित किया जाता है। नागरी लिपि का समुचित विकास १०वीं शताब्दी ई० से माना जाता है। प्राचीन अभिलेखों की लिखावट के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भीमदेव प्रथम (१०२९ ई०) और भीमदेव द्वितीय (१२०० ई०) तथा उदयवर्मन् (१२०० ई०) के अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि वर्तमान हिन्दी के बहुत समीप आ गई है। इनमें स्वरों और व्यंजनों की बनावट, वर्णों के ऊपर शिरोरेखा तथा मात्राओं के चिह्न बहुत कुछ वर्तमान हिन्दी के तुल्य हो गए हैं। इस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि का प्रारम्भ १००० से १२०० ई० तक मानना उचित है। बाद में आवश्यक संशोधन परिवर्तन होते रहे हैं। १८वीं शती ई० की नागरी लिपि प्राय: वर्तमान नागरी के तुल्य पूर्ण विकसित हो गई थी। केवल कुछ मात्राओं में अन्तर पाया जाता है।

देवनागरी नामकरण—नागरी या देवनागरी नाम के विषय में पर्याप्त मतभेद है। इस विषय में आज तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ है। इस विषय में ये सुझाव दिये गए हैं—१. यह लिपि नगरों में प्रचलित थी, अत: नागरी नाम पड़ा। २. गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने से इसका नाम नागरी पड़ा। ३. श्री शाम शास्त्री का कथन है कि देवमूर्तियों के सांकेतिक त्रिकोण या चक्र आदि चिह्नों को 'देवनगर' कहते थे। उसके मध्य में लिखे जाने के कारण इन अक्षरों को देवनागरी कहा गया। ४. देवनगर स्थान से उत्पन्न होने के कारण देवनागरी नाम पड़ा। पुष्ट प्रमाणों के अभाव में कोई भी मत प्रामाणिक नहीं है।

१४.९. देवनागरी : आदर्श लिपि

किसी भी आदर्श लिपि में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है। देवनागरी में ये सभी गुण प्राप्त होते हैं—

१. **ध्वनि और लिपि में एकरूपता**—जो बोला जाए वही लिखा जाए तथा जो लिखा जाए, वही बोला जाए। यह गुण देवनागरी लिपि में है।

२. **एक ध्वनि के लिए एक चिह्न**—प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र चिह्न होना चाहिए। एक के लिए अनेक चिह्न या अनेक के लिए एक चिह्न भाषा की अवैज्ञानिकता के सूचक हैं। हिन्दी में प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतन्त्र एक-एक चिह्न है। इसके विपरीत रोमन लिपि में एक ही ध्वनि के लिए अनेक स्वरों और व्यंजनों का प्रयोग होता है। दूसरी ओर अनेक स्वरों के लिए एक ही स्वर का प्रयोग किया जाता है।

३. **समग्र ध्वनियों की अभिव्यक्ति**—आदर्श लिपि में समस्त ध्वनियों को अंकित करने की क्षमता होनी चाहिए। आज संसार की जितनी लिपियाँ हैं, उनमें देवनागरी लिपि ही समस्त ध्वनियों को अंकित करने की सबसे अधिक क्षमता रखती है। रोमन और उर्दू लिपि इस विषय में बहुत अपूर्ण सिद्ध होती हैं। सूक्ष्मतम संकेत-निर्देशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि-चिह्नों का आविष्कार किया गया है। इसका माध्यम कुछ अंश तक रोमन लिपि को रखा गया है।

४. **असंदेह**—आदर्श लिपि की विशेषता है कि वह सुपाठ्य हो और किसी प्रकार का संदेह न हो। एक संकेत से दूसरे संकेत का भ्रम न हो। स्पष्टता और असन्देह की दृष्टि से देवनागरी लिपि रोमन और उर्दू से अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होती है।

५. **लेखन में एकरूपता**—आदर्श लिपि वही है, जिसमें प्रत्येक वर्ण एक ही रूप में रहे। देवनागरी में यह विशेषता है।

६. **लिपि-सौन्दर्य**—आदर्श लिपि में सुन्दरता गुण का समावेश होना चाहिए।

७. **यांत्रिक सुविधा**—मुद्रण और टंकण की दृष्टि से सुविधा एवं सरलता हो।

८. **आशुलेखन**—वर्तमान वैज्ञानिक युग की आवश्यकता है कि आदर्श लिपि में आशुलेखन की अधिक क्षमता होनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आदर्श लिपि के सभी गुण देवनागरी लिपि में प्राप्य हैं। कुछ न्यूनताएँ भी हैं, जिनका परिमार्जन आवश्यक है। जैसे—(१) इ की मात्रा वर्ण से पूर्व लगना अवैज्ञानिक है। प्राचीन ब्राह्मी में यह वर्ण के बाद में लगती थी। (२) हलन्त र् को अनेक प्रकार से लिखना। (३) अ ण ल आदि का दो प्रकार से लिखा जाना। (४) ख-रव, ध-घ, भ-म आदि में स्पष्ट अन्तर का न होना। (५) संयुक्त व्यंजनों का एकरूप में न लिखा जाना। (६) अंग्रेजी, उर्दू आदि की क़, ख़, ग़, ज़ आदि ध्वनियों का देवनागरी लिपि में अभाव। इनमें से कुछ न्यूनताओं का निराकरण किया गया है। शेष न्यूनताओं का भी निराकरण अपेक्षित है।

*